R.N.I. No. : DELBIL / 2001/4685 Postal regn. No. : A.L.G. / 29 / 2021-23

मूल्य-4 रुपये, वर्ष-21, अङ्क-11 नवम्बर 2021 1

श्री आदिनाथ-कुन्दकुन्द-कहान दिगम्बर जैन ट्रस्ट, अलीगढ़ (उ०प्र०) का
मासिक मुख समाचार पत्र

मङ्गलायतन

नवम्बर का E - अंक

आध्यात्मिक शिक्षण शिविर की झलकियाँ

मङ्गलायतन

श्री आदिनाथ-कुन्दकुन्द-कहान दिगम्बर जैन ट्रस्ट, अलीगढ़ (उ.प्र.) का

मासिक मुखपत्र

वर्ष-21, अङ्क-11 (वी.नि.सं. 2548; वि.सं. 2078) नवम्बर 2021

न राग न द्वेष, धरा दिगम्बर वेष...

न राग न द्वेष, धरा दिगम्बर वेष,
न किंचित् ममता शेष
तुम्हीं तो मेरे जिनवर हो ।।टेक ।।

तुम दर्शन-ज्ञान स्वरूपी, सुख वीर्य से भरपूर।
तुम गुण अनंत के धारी, पर गंध से बहु दूर॥
तेरी वाणी, लागे प्यारी, नहिं मन में कोई क्लेश ॥1 ॥

सुर किन्नर भी गुण गाते, योगी भी ध्यान लगाते।
तेरी महिमा इतनी प्यारी, गणधर भी पार न पाते॥
तुम मंगल तुम उत्तम, तुम जग में शरणा एक ॥2 ॥

तुम छत्र चंवर से शोभित, सिंहासन दुंदुभि मोहित।
भामंडल भी लगे प्यारा, और वृक्ष शोक हरतारा॥
होवे वृष्टि पुष्पों की, और खिरे दिव्यध्वनि शेष ॥3 ॥

संस्थापक सम्पादक
स्व. पण्डित कैलाशचन्द्र जैन, अलीगढ़
मुख्य सलाहकार
श्री बिजेन्द्रकुमार जैन, अलीगढ़
सम्पादक
डॉ. सचिन्द्र शास्त्री, मङ्गलायतन
सह सम्पादक
पण्डित सुधीर जैन शास्त्री, मङ्गलायतन
सम्पादक मण्डल
ब्रह्मचारी पण्डित ब्रजलाल शाह, वढ़वाण
बाल ब्रह्मचारी हेमन्तभाई गाँधी, सोनगढ़
डॉ. राकेश जैन शास्त्री, नागपुर
श्रीमती बीना जैन, देहरादून

सम्पादकीय सलाहकार
पण्डित रतनचन्द भारिल्ल, जयपुर
पण्डित विमलदादा झाँझरी, उज्जैन
श्री चिरंजीलाल जैन, भावनगर
श्री प्रवीणचन्द्र पी. वोरा, देवलाली
श्री वसन्तभाई एम. दोशी, मुम्बई
श्री श्रेयस् पी. राजा, नैरोबी
श्री विजेन वी. शाह, लन्दन
मार्गदर्शन
डॉ. किरीटभाई गोसलिया, अमेरिका
पण्डित अशोक लुहाड़िया, अलीगढ़

इस अङ्क के प्रकाशन में
सहयोग-
स्व० श्री शीतलप्रसाद
शकुन्तलादेवी जैन
C/o. आजाद ट्रेडिंग कम्पनी
जैन मन्दिर के नीचे,
लाल कुँआ,
बुलन्दशहर-203001

शुल्क :
वार्षिक : 50.00 रुपये
एक प्रति : 04.00 रुपये

क्या - कहाँ

जिन-वचन का सार.... 5
समयसार नाटक प्रवचन.... 9
श्रुत परम्परा एवं श्रुतज्ञान 24
प्रेरक प्रसंग.... 26
आचार्यदेव परिचय शृंखला.... 27
जिस प्रकार-उसी प्रकार.... 29
समाचार-दर्शन.... 30

जिन-वचन का सार

[कलश टीका पर पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी का प्रवचन]

जिनवचन में अर्थात् दिव्यध्वनि द्वारा कहे गये शुद्ध आत्मस्वरूप में जो जीव रमण करते हैं, उसकी रुचि-प्रतीति अनुभव करते हैं, वह जीव शीघ्र ही अंतर में शुद्ध जीव को प्रत्यक्ष रूप से प्राप्त करते हैं - यह बात चौथे कलश में कहते हैं—

उभयनय विरोधध्वंसिनि स्यात्पदाङ्के
जिनवचसि रमन्ते येः स्वयं वांतमोहाः।
सपदि समयसारं ते परं ज्योतिरुच्चैर-
नवमनयपक्षाक्षुण्णमीक्षन्त एव ॥४॥

वह आसन्न भव्य जीव शीघ्र ही शुद्ध स्वरूप को प्रत्यक्षरूप से प्राप्त करते हैं—देखते हैं, अनुभव करते हैं। - कौन ? कि जो दिव्यध्वनि में कही हुई उपादेयरूप शुद्ध जीव वस्तु को रुचि में-प्रतीति में लेते हैं, वह शीघ्र ही शुद्धात्मा को प्राप्त करते हैं।

कैसा है शुद्ध जीव ? अतिशययुक्त ज्ञानज्योतिरूप है। ऐसे आत्मा के अनुभव बिना अनंत काल चला गया, परंतु इसका अनुभव करते अनंत काल नहीं लगता, स्वसन्मुख अभ्यास द्वारा क्षणमात्र में तुरंत ही अनुभव में आता है।

सम्यग्दर्शन हुआ, वहीं शुद्धात्मा की प्रत्यक्ष प्राप्ति होना कह दिया है। राग और मन के अवलंबन बिना आत्मा का साक्षात्कार हुआ, उसके आनंद का अनुभव हुआ, वहाँ उसकी प्रत्यक्ष प्राप्ति हो गई—ऐसा कहा। स्वानुभूति में आत्मा आया, वह कोई नया नहीं आया, वह तो अनादि से स्वयंसिद्ध ही था, स्वयं को व्यक्त अनुभव नवीन हुआ, वस्तु कोई नवीन नहीं हुई है। जैसे कुमतवाले कोई एकांत क्षणिक कहते हैं, कोई एकांत अपरिणामी कहता है,

कोई आत्मा नया उत्पन्न हुआ ईश्वर ने बनाया, ऐसा अनेक प्रकार से कुनय के पक्षपात करनेवाले कहते हैं। परंतु इस प्रकार कहने से अनेकांतस्वरूप आत्मा का जो स्वरूप है, वह कोई खंडित नहीं होता। जो लोग उल्टा मानते हैं, वह झूठे हैं, परंतु वस्तुस्वरूप तो जैसा है, वैसा स्व-स्वरूप से सत् अखंडित है।

ऐसे स्वरूप को भव्यजीव ही प्राप्त करते हैं। क्या करने से प्राप्त करते हैं ? कौन सी क्रिया करने से शुद्धात्मा को प्राप्त करते हैं ?—तो कहते हैं कि दिव्यध्वनिरूप जिन वचन में कहे गये उपादेयरूप शुद्धात्मस्वरूप में वह रमण करते हैं, अर्थात् उसकी रुचि करके उसमें एकाग्रता का बारबार अभ्यास करते हैं—इस प्रकार जिनवचन में (अर्थात् जिनवचन का सारभूत शुद्धात्मा में) जो रमण करते हैं, वह तुरंत ही शुद्धात्मा का अनुभव करते हैं।

देखो, यह जिनवचन का सार !

जिनवचन का सार क्या ? कि शुद्धात्मा को उपादेय करना यह; राग-व्यवहार-निमित्त इन सभी का ज्ञान जिनवचन करवाते हैं, परंतु इनको उपादेय करने का जिनवचन नहीं कहते; इस राग-व्यवहार या निमित्त के अवलंबन में लाभ मानकर रुके रहने को जिनवचन नहीं कहते; राग से पार, निमित्त से पार, व्यवहार से पार ऐसा जो परमार्थभूत शुद्धात्मा, वही प्रथम से अंत तक उपादेय है—ऐसा जिनवचन का उपदेश है। जिसने शुद्धात्मा को उपादेय किया, उसने ही जिनवचन सुना है। वह जीव तुरंत ही शुद्धात्मा को साक्षात् अनुभव करता है।

अकेला जिनवचन अर्थात् दिव्यध्वनि वह तो पुद्गल की रचना है, अचेतन है, उसके लक्ष से कोई स्वरूप की प्राप्ति होती नहीं; परंतु उसके वाच्यरूप जो उपादेय वस्तु अर्थात् कि-परमार्थ आत्मस्वभाव-इसके लक्ष से अनुभव करते सच्चे फल की प्राप्ति होती है। शुद्धात्मा के अनुभव बिना फल प्राप्ति होती नहीं, मोक्षमार्ग होता नहीं, धर्म होता नहीं।

स्वानुभव बिना की श्रद्धा को सच्ची श्रद्धा कहते नहीं। स्वानुभव बिना मात्र शास्त्रज्ञान को सच्चा ज्ञान कहते नहीं। भाई! तेरी वस्तु क्या है? तेरी वस्तु तरफ झुके बिना किसकी प्रतीति की? किसकी रुचि की? राग के द्वारा वस्तु मिलेगी—इस प्रकार जो मानता है, उसके अंतर में राग की उपादेयबुद्धि है, परंतु जिनवाणी में उपादेयरूप कहे गये शुद्धात्मा को वह जानता नहीं। शुद्धात्मा के अलावा दूसरे रागादिक को जो उपादेय मानता है, वह जिनवचन से विरुद्ध वर्तता है।

किस प्रकार के हैं जिनवचन? दोनों नयों का विकल्प दूर करके शुद्धवस्तु का निर्विकल्प अनुभव कराते हैं। दोनों नयों की परस्पर विरुद्धता-एक नय का विकल्प इस प्रकार है कि वस्तु द्रव्यरूप है, दूसरे नय का विकल्प ऐसा है कि वस्तु पर्यायरूप है—ऐसे नय विकल्पों द्वारा वस्तु अनुभव में आती नहीं। दोनों नयों की विरुद्धता को दूर करके, और शुद्धात्मा का आश्रय करवाकर जिनवचन शुद्धस्वरूप का निर्विकल्प अनुभव करवाते हैं।

देखो, इस कलश टीका में अध्यात्म के सुंदरभाव प्रगट किये हैं। पंडित बनारसीदासजी के समय में इस ग्रंथ का अभ्यास करनेवाले साधर्मी कहते थे कि—'सरस सरस यह ग्रंथ'

शुद्ध जीवस्वरूप के अनुभव के समय दोनों नयों का विकल्प दूर हो जाता है, इसलिये अनुभवदशा में दोनों नयों के विकल्प झूठे हैं।—असत् हैं। अनुभव में तो द्रव्य-गुण-पर्याय सभी है, परंतु उसमें विकल्प नहीं है; विकल्प को असत् कहा है, पर्याय को असत् नहीं ठहराया, पर्याय तो अंदर अभेद हो गई है, और विकल्प टूट गया है। निश्चयनय का जो विषय है, वह कोई झूठा नहीं है, परंतु अनुभव दशा में उसका विकल्प नहीं है, इसलिये विकल्प झूठा कहा गया है। इस प्रकार के अनुभव से मिथ्यात्व का सहजता से वमन हो जाता है। जहाँ आत्मा के स्वभाव को उपादेय बनाकर

परिणति उस तरफ गई, वहाँ मिथ्यात्व सहजरूप से दूर हो गया। परिणति को अंतर अनुभव में लाये बिना लाख उपाय से भी मिथ्यात्व दूर होता ही नहीं, और परिणति जहाँ अंतर स्वभाव में गई, वहाँ मिथ्यात्वभाव सहज ही दूर हो जाता है, वहाँ पर उसको दूर करने का पृथक् से प्रयत्न करना नहीं पड़ता।

इस समयसार में उपादेयरूप शुद्ध जीववस्तु बतलाई गई है। इसके अनुभव से मोह का नाश होता है, यह इस शास्त्र का फल है।

जगत में अनंतानंत जीव हैं; उनमें अनंतवें भाग के जीव तो अभव्य हैं, वह कभी मोक्ष प्राप्त नहीं कर सकते, कारण कि वे शुद्धात्मा के अनुभव से रहित हैं; अब भव्य जीवों में भी कोई सभी जीव मोक्ष प्राप्त नहीं कर लेते, उनमें से कितने जीव तो मोक्ष के अधिकारी हैं, उन मोक्षगामी भव्य जीवों के मोक्ष में जाने के समय की अवधि निश्चित है, उसको केवली भगवान जानते हैं। जो मोक्ष को प्राप्त होंगे, वह शुद्धात्मा के अनुभव से ही मोक्ष को प्राप्त करेंगे। कौन सा जीव कितना समय बीतने पर मोक्ष प्राप्त करेगा, इस प्रकार का हिसाब (नोंध) केवलज्ञान में है, अथवा केवलज्ञानी के ज्ञान में सभी लिखने में आ गया है—जानने में आ गया है।

अहा! अनंत जीव, उनकी तीनों काल की समस्त अवस्था जिसमें साक्षात् जानने में आवे—ऐसे केवलज्ञान की शक्ति की क्या बात! ऐसे केवलज्ञान की अचिंत्य महिमा जिस ज्ञान में जमी, वही ज्ञान भी केवलज्ञान की जाति का होकर मोक्षमार्ग तरफ चलने लगा।

जिस जीव ने केवलज्ञान की प्रतीति की, सम्यग्दर्शन किया, उस जीव को अब अर्धपुद्गलपरावर्तन से अधिक संसार स्थिति होती ही नहीं, उसका संसार मर्यादित हो गया। सम्यक्त्व के योग्य जीव हुआ, वहाँ काललब्धि परिपक्व हो गई—ऐसा कहने में आता है। इस प्रकार पुरुषार्थ

.... शेष पृष्ठ 23 पर

श्री समयसार नाटक पर पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी के धारावाही प्रवचन

ज्ञाता की अवस्था

अब समयसार कलश 21 के पद्यरूप 22वाँ काव्य चलता है, जिसमें कविवर बनारसीदासजी ने ज्ञाता की अवस्था कैसी होती है यह बताया है।

ज्ञाता की अवस्था

कै अपनौं पद आप संभारत,
कै गुरुके मुखकी सुनि बानी।
भेदविग्यान जग्यौ जिन्हिकै,
प्रगटी सुविवेक-कला-रसधानी।।
भाव अनंत भए प्रतिबिंबित,
जीवन मोख दसा ठहरानी।
ते नर दर्पन ज्यौं अविकार,
रहैं थिररूप सदा सुखदानी ।।22।।

अर्थः- अपने आप स्वरूप सम्हालने से अथवा श्रीगुरु के मुखारविंद द्वारा उपदेश सुनने से जिनको भेदज्ञान जाग्रत हुआ है अर्थात् स्वपर विवेक की ज्ञान शक्ति प्रगट हुई है, उन महात्माओं को जीवनमुक्त अवस्था प्राप्त हो जाती है। उनके निर्मल दर्पणवत् स्वच्छ आत्मा में अनंत भाव झलकते हैं परन्तु उनके कुछ विकार नहीं होता। वे सदा आनंद में मस्त रहते हैं ।।22।।

काव्य - 22 पर प्रवचन

आत्मा का स्वभाव अतीन्द्रिय ज्ञान और आनन्द-स्वरूप है, परन्तु उसको ऐसे स्वरूप का अनादि से विस्मरण हो गया है और पुण्य-पाप भाव यह 'मैं' और इनके फल में प्राप्त होनेवाली चारगति वह मेरी है ऐसा मान लिया गया है। यह अज्ञानी का महाभ्रम अज्ञान और पाखण्ड है। अपना पद तो शुद्ध चैतन्य ज्ञानानन्द है। उस निजपद को भूल करके शरीर, लक्ष्मी, आबरू, कीर्ति वह मेरी है, शुभ-अशुभ भाव मेरे हैं -ऐसा मानकर जीव

अनादि काल से अज्ञान से दु:खी है। अपने स्वरूप की हिंसा करके पर में सुख की कल्पना करता है -ऐसा सर्वज्ञ तीर्थंकर त्रिलोकनाथ परमात्मा कहते हैं।

मैं ज्ञानानन्द स्वभावी हूँ यह भक्ति पढ़कर विचार आया था कि मैं ज्ञानानन्द स्वभावी हूँ ऐसा भान हो, तब वह ज्ञानानन्द स्वभावी है। मात्र ऊपर-ऊपर से ज्ञानानन्द स्वभावी माने उससे लाभ नहीं। मैं ज्ञानानन्द स्वभावी हूँ ऐसा भान कब हो ? कि जब पुण्य-पाप भावों की रुचि छोड़कर, ज्ञानानन्द प्रकट करे, तब उसके द्वारा मैं ज्ञानानन्द स्वभावी हूँ- ऐसा भान हो, उसे ही सम्यग्दृष्टि और जैन का प्रथम सोपान चढ़ना कहा जाता है। यही धर्म की प्रथम इकाई हैं। वस्तुरूप से तो आत्मा तीनों काल सिद्ध-समान है, उसको दृष्टि में लेना।

जो चीज तेरी हो, वह तुझसे जुदा कैसे हो ?चालीस लाख का मकान मेरा है- ऐसा मानता है, परन्तु वह तो परमाणुओं का है। तेरा कहाँ था ?ये करोड़पति पुत्र भी तेरे कहाँ हैं ?अन्दर में ज्ञान और आनन्द भरा है, वह तेरा है। उन्हें कहीं बाहर से लाना नहीं पड़ता, परन्तु अनादि से मिथ्यात्व की विपरीत भ्रमणा से बाहर में सुख की कल्पना करके स्वरूप का घात करता है।

यहाँ कहते हैं- अनादि से निजपद को भूला था। वह यदि अब दृष्टि को अन्तरोन्मुख करके निजस्वरूप की सँभाल करता है -स्मरण करता है। अहो! मेरा तो यह ज्ञानानन्द स्वरूप है- ऐसे स्वरूप का अनुभव करता है; उसको सम्यग्दृष्टि, धर्मी अथवा सुख के पंथ का पथिक कहते हैं। अन्य सब पर में सुख की कल्पना करनेवाले दु:ख के पंथ में पड़े हैं; क्योंकि जैसे बालक लकड़ी को घोड़ा मानता है तो क्या उससे वह घोड़ा सवारी में काम आता है ? वैसे ही पर में सुख मानने से क्या सुख मिल जाता है ?अरे! यह तो अज्ञान की मूर्खाई है।

भगवान कहते हैं कि भाई! यह शरीर तो तेरा नहीं; परन्तु ये

शुभाशुभभाव भी तेरे नहीं हैं। तू तो शरीर और विभाव से रहित है; परन्तु इनकी सँभाल के चक्कर में तूने कभी तेरे निजघर की सँभाल नहीं की है। जो तेरे नहीं- ऐसे शरीर, लक्ष्मी आदि की सँभालने में रुक गया; परन्तु अपने निधान को तूने कभी नहीं सँभाला।

'कै अपनो पद आप सँभारत कै गुरु के मुख की सुनी वानी' किसी को भेदज्ञान अपने आप अपना स्वरूप सँभालने से होता है और किसी को श्रीगुरु का उपदेश सुनने से होता है। पूर्व के संस्कार जागृत हो जाने से स्वयं भेदज्ञान होता है, वह 'नैसर्गिक' सम्यग्दर्शन है और गुरुउपदेश के निमित्त से भेदज्ञान होता है, वह 'अधिगमज' सम्यक्त्व है। गुरु की वह वाणी कैसी होती है? कि राग और विकल्प से आत्मा को भिन्न बतावे- ऐसी गुरु की वाणी होती है। आत्मज्ञानी सच्चे संत-गुरु ऐसा कहते हैं, भाई! यह तुझे जो हिंसा, झूठ, चोरी आदि के अशुभ विकल्प हैं, दया, दान, व्रत, भक्ति आदि के शुभ विकल्प उठते हैं, उनसे तेरी ज्ञानानन्दज्योति पृथक है, अतः उससे भेदज्ञान कर! तू अपने को शुभ-अशुभ दोनों प्रकार के राग से भिन्न जान।

अरे! यह सत्य बात जिसके कान में नहीं पड़े और जीव ऐसे के ऐसे बाहर की रुचि में चले जाते हैं, उनका अवतार तो कौआ जैसा है। जिसने जिनेश्वर का मार्ग सुना नहीं, उसकी विधि क्या- उसकी जिसे खबर नहीं, उसे समझ में कहाँ से आवे? उनका मनुष्यभव तो व्यर्थ चला जायेगा। इस जीव ने पूर्व में भी इसीप्रकार मनुष्य भव खोया है।

शरीर, वाणी और मन तो रूपी है और आत्मा तो अरूपी है। आत्मा शरीर का हो तो आत्मा रूपी होना चाहिए अथवा शरीर, वाणी, मन आत्मा के हों तो वे अरूपी होने चाहिए। शरीर जड़रूप रहा है और जीव तो जीव ही है। लक्ष्मी जड़ है, उसे जीव की कैसे मानें? जो देह, मन, वाणी, लक्ष्मी आदि से भेदज्ञान करके भिन्नता करते हैं वे समकिती हैं। भेदज्ञान माने दो भिन्न पदार्थों को भिन्न जानना। एक आत्मा है और दूसरे जड़ पदार्थ हैं। आत्मा ज्ञानानन्दमय है, राग-विकार दुःखरूप है; आत्मा ज्ञानमय है, रागादि

अज्ञानमय भाव है। इस प्रकार भिन्न स्वरूपवाले तत्वों को भिन्न जानना, वह भेदविज्ञान है। यह जिनेश्वरदेव द्वारा समवसरण में असंख्य देवों और सौ इन्द्रों की उपस्थिति में कही बात है। 32 लाख विमान कि जिसमें एक-एक में असंख्य तो देव हैं- ऐसे देवलोक के स्वामी शकेन्द्र और ईशान इन्द्र की उपस्थिति में भगवान द्वारा फरमाई गई बात है। गुरु की वाणी हो या तीर्थंकर की वाणी हो, उसमें 'भेदज्ञान' आया है। यह तो भगवान का धर्म है। भाई! तुझे खबर नहीं है।

पर से भिन्न पड़कर अपना ज्ञान होने पर पर का ज्ञान भी यथार्थ होता है कि ये रागादि मेरी चीज नहीं है। यह ज्ञान ही भेदज्ञान है।

'भेद विज्ञान जग्यौ जिन्हि कैं, प्रकटी सुविवेक-कला रसधानी' अनादि से राग, पुण्य और विकल्प आदि मेरे हैं- ऐसा अभेदज्ञान-अज्ञान था। अब जिसको गुरु उपदेश से अथवा स्वयं बोध प्राप्त होने से रागादि से भेदज्ञान हुआ, जलहल चैतन्य ज्योति के नूरपूर का अनुभव हुआ, उसको सुविवेक जागृत हो गया। भेदज्ञान बिना मात्र ऊपर से माने, उसको ऐसा विवेक नहीं प्रकटता। ऊपर से अर्थात् वस्तु को देखे बिना उसका विश्वास आ गया माने तो वे सब ऊपर-ऊपर से मानते हैं। ज्ञानानन्दस्वरूप की सत्ता का स्वीकार कब हो ?कि जब ज्ञानानन्दस्वरूप की सत्ता को स्पर्शे -उसके अंश का अनुभव हो- उसमें एकाकार हो; तब स्वरूप की यथार्थ श्रद्धा, ज्ञान और अनुभव हुआ कहलाये। इसके पूर्व मार्ग की समझ करे कि वीतराग-तीर्थंकर परमात्मा द्वारा कथित मार्ग इस प्रमाण ही है, अन्यप्रकार नहीं।

अनादि से मूढ़ अपने को पुण्य-पाप का स्वामी मानता था, उसने जाना कि मैं तो अरिहन्त और सिद्ध जैसा आत्मा हूँ, मुझसें तो उनके जैसा ज्ञान और आनन्द है। ऐसा जानकर अपने वैसे स्वरूप के सन्मुख होकर अपने ज्ञानानन्द का व्यक्तरूप अंशत: अनुभव करे, तब उसको आत्मा ज्ञानानन्दस्वभावी है, उसकी सच्ची प्रतीति हुई कही जावे। अन्यथा ज्ञानानन्द की बातें करने से ज्ञानानन्द नहीं हो जाता। राग की एकता टूटकर

ज्ञानानन्दस्वरूप की एकता होने पर वह तो चैतन्यराजा हो गया। उसको चैतन्य की राजधानी मिल गई। अनादि से अपने को राग का राजा मानता था, वह तो भिखारीपना था।

संवत् 1981-82 के साल में लींबड़ी में वहाँ का राजा व्याख्यान सुनने आया। वह राजा कहे, महाराज! पैसेवालों का धर्म में कितना अधिकार है? उससे कहा, देखो! धर्म में पैसेवालों का कुछ अधिकार नहीं है। पैसा तो जड़ है और पैसा मेरा है ऐसा लक्ष्य जाता है, वह तो पाप है और कदाचित् पैसे का दानादि का भाव आवे, वह पुण्य है। उसमें कहीं धर्म नहीं।

वीतराग का मार्ग अलौकिक है भाई!

पैसा हो उससे आत्मा को क्या? पैसा मेरा है ऐसी मान्यता तो अनन्त दु:ख को देनेवाली है तथा कितने ही तो ऐसा मानते हैं कि हम कोई पैसे के लिए कारखाने नहीं चलाते, लोगों को आजीविका मिले, इसके लिए चलाते हैं। वे तो अकेले मिथ्याभिमान का सेवन करते हैं। धर्मी को ऐसा ममत्व और अभिमान नहीं होता। वह भले ही चक्रवर्ती के विशाल राज्य में हो या देवलोक का इन्द्र हो; परन्तु राज्य को, पैसे को या इन्द्रपद को अपना नहीं मानता। अरे! शुभ विकल्प को भी निज नहीं मानता।

जैसे चन्द्रमा में पहले दूज उगती है और फिर बढ़ते हुए पूर्णिमा होती है; वैसे ही भेदज्ञान केवलज्ञान रूपी पूर्णिमा की प्रथम कला है। ज्ञानी को ऐसी सुविवेकरूपी कला का रस प्रकट हो गया है। **'भाव अनन्त भये प्रतिबिंबित'** आत्मा निजधर्म को पाता है। राग की वृत्ति से भिन्न सम्यग्ज्ञान होने पर उसका ज्ञान निर्मल होता है। उसमें जगत के पदार्थ ज्ञात होते हैं, तथापि वह ज्ञान मलिन नहीं होता।

भरत चक्रवर्ती के 96 हजार रानियाँ थीं, 96 करोड़ सेना थी, 48 हजार पाटण थे, 72 हजार नगर थे, एक करोड़ हल थे; फिर भी वे जानते थे कि ये मेरे नहीं और मैं इनका नहीं। जहाँ मैं हूँ, वहाँ ये सब नहीं और जहाँ ये हैं, वहाँ मैं नहीं- ऐसा भेदज्ञान जिसको होता है, उसको समकिती और धर्मी कहते हैं।

ऐसे जीवों को जीवनमुक्त दशा प्राप्त हो जाती है अर्थात् कि जीवता होने पर भी वह अन्दर से मुक्त है। संयोग, आयुष्य, पुण्य-पाप का राग आदि होने पर भी समकिती उनसे मुक्त है। संयोग आदि ज्ञान में ज्ञात होते हैं, परन्तु धर्मी को उनमें निजपना नहीं होता। **'जीवन मोख दसा ठहरानी'**- संयोग और राग तथा आयुष्य होने पर भी धर्मी उनसे मुक्त है।

लोगों को यह बात एल.एल.बी. पढ़ने जैसी बड़ी कठिन लगती है, परन्तु यह तो धर्म की प्रथम इकाई की बात है। एल.एल.बी. जैसी बात तो अभी दूर है।

मैं शरीर, राग और विकल्प से भिन्न हूँ- ऐसा भान होने पर धर्मी को अनन्त पदार्थ ज्ञान में ज्ञात तो होते हैं; परन्तु वे मेरे हैं- ऐसा नहीं मानता; क्योंकि ज्ञान में जानने का तो उसका स्वभाव है; परन्तु ममता करने का स्वभाव नहीं है। जैसे दर्पण में उसकी निर्मलता के कारण अग्नि, बर्फ, नारियल, कोयला आदि सभी पदार्थ झलकते हैं, इससे दर्पण कोई उष्ण या मैला नहीं हो जाता; वैसे ही ज्ञानरूपी दर्पण की निर्मलता के कारण अनन्त पदार्थ ज्ञान में ज्ञात होते हैं; परन्तु इससे ज्ञान कोई मैला नहीं हो जाता। **'रहे थिररूप सदा सुखदानी।'** धर्मी को शरीर में हलन-चलन की, वाणी की, मन की, राग की क्रिया में बदलाव होने पर भी धर्मी सदा स्थिररूप-सुखरूप रहता है। मैं शरीर को चलाता हूँ, मैं बोलता हूँ इत्यादि मान्यता धर्मी के नहीं होती।जिसको ऐसी बुद्धि रहती है कि मैं शरीर को चलाता हूँ, वह तो मिथ्यादृष्टि है। मैं ज्ञानानन्दस्वरूप हूँ -ऐसा भान हुआ, वह जीव सदा सुखी ही रहता है, आनन्द में ही है, वह विकल्प से मुक्त है।

सम्यग्दर्शन कोई साधारण वस्तु नहीं है। सम्यग्दर्शन हुआ कि वह सुख में ही है। आबाल-गोपाल मानता है ऐसी साधारण चीज यह नहीं है। जो पुण्य-पाप के राग से भिन्न पड़ा, वह सुख में ही है, दु:ख में नहीं। दु:ख तो विकार में है, विकार जीव का स्वरूप नहीं है, उससे भिन्न ज्ञानी महाआनन्द में मस्त रहता है।

इस प्रकार 22 वाँ काव्य हुआ।

अब 22वें कलश के पद्यानुवाद रूप 23वाँ काव्य कहते हैं। उसमें बनारसीदासजी भेदविज्ञानी की महिमा गाते हैं। जिसको विकल्प मात्र दु:खरूप भासित हुआ है और उससे अपने आत्मा को भिन्न जाना है- ऐसे भेदज्ञान की यह महिमा है।

भेदविज्ञान की महिमा

याही वर्तमानसमै भव्यनिकौ मिटौ मोह,
लग्यौ है अनादिकौ पग्यौ है कर्ममलसौं।
उदै करै भेदज्ञान महा रुचिकौ निधान,
उरकौ उजारौ भारौ न्यारौ दुंद-दलसौं ।।
जातैं थिर रहै अनुभौ विलास गहै फिरि,
कबहूं अपनपौ न कहै पुदगलसौं ।
यहैं करतूति यौं जुदाई करैं जगतसौं,
पावक ज्यौं भिन्न करैं कंचन उपलसौं।।23।।

अर्थ:- इस समय भव्य जीवों का अनादिकाल से लगा हुआ और कर्म मल से मिला हुआ मोह नष्ट हो जावे। इसके नष्ट हो जाने से हृदय में महा-प्रकाश करनेवाला, संशय समूह को मिटानेवाला, दृढ़ श्रद्धान की रुचि-स्वरूप भेदविज्ञान प्रगट होता है। इससे स्वरूप में विश्राम और अनुभव का आनन्द मिलता है तथा शरीरादि पुद्गल पदार्थों में कभी अहंबुद्धि नहीं रहती। यह क्रिया उन्हें संसार से ऐसे पृथक् बना देती है जिस प्रकार अग्नि स्वर्ण को किट्टिका से भिन्न कर देती है ।।23।।

काव्य - 23 पर प्रवचन

यह तो वीतराग परमेश्वर का दिया हुआ मक्खन है।

भव्यजीवों के अनादिकाल से लगा हुआ मोह इसी समय नष्ट होओ। प्रथम तो, वस्तु का स्वरूप ऐसा है, उसे ज्ञान में तो ले। मार्ग यही है, अन्य कोई मुक्ति का मार्ग नहीं ऐसा समझ में ले तो फिर मार्ग पर चले। जो

परलक्ष्यी समझ में भी यह बात नहीं लेता, वह आगे नहीं जा सकता।

'पग्यो है कर्ममलसौं' – अनादि से कर्म के निमित्त में अपनापना मानकर मिथ्यात्व का सेवन करता था वह, अब कर्म और मिथ्यात्व को आत्मा से भिन्न जानने से मोह नष्ट हो जाता है।

एक मुमुक्ष का पुत्र परदेश में रहता है। उसके पैसा, वैभव और बाग-बगीचे इतने हैं कि रजवाड़ा देख लो, परन्तु वह यहाँ हमारे पास आता है तो रो पड़ता है कि अरे! हम कहाँ पड़े हैं! वहाँ तो आपका नाम सुनते ही हमे रोना आ जाता है अर्थात् विरह लगता है। दूसरों को ऐसा लगे कि ओहो..! कितना वैभव है; परन्तु वह वैभव नहीं धूल है। उसमें कहीं सुख नहीं है। पूर्व पुण्योदय के कारण यह धनादि वैभव धूल दिखती है, परन्तु वह जीव की कहाँ थी ?उसके प्रति मोह से तो जीव उलटे दु:खी होता है, उससे भेदज्ञान करे, राग की एकता तोड़े तो सुखी होवे।

अनादि से अज्ञानी का जो ज्ञान राग की एकता में रुका था, वह अब राग के विकल्प से भिन्न पड़ता है -ऐसे प्रथम में प्रथम समकित प्राप्त करनेवाले की बात चल रही है। मुनि और केवली की बात तो कोई अद्भुत-अलौकिक है। यहाँ तो चौथे गुणस्थान की बात है।

'उदै करे भेदज्ञान महारुचि कौ निधान' – मोह नष्ट हो जाने से हृदय में महाप्रकाश करनेवाला, संशय समूह को मिटानेवाला दृढ़ श्रद्धान की रुचिस्वरूप भेद विज्ञान प्रगट होता है। ज्ञानानन्द का दरिया महाप्रभु की रुचि हुई। रंक ऐसे राग की रुचि थी, वह गई और विशाल महानिधान स्वरूप निज आत्मा की रुचि हुई, भेदविज्ञान प्रकट हुआ, चैतन्य का प्रकाश अनुभव में आया; तब उसको समकिती कहते हैं और तभी से संशयादि दोष मिट जाते हैं। पुण्य-पाप के विकल्प के द्वंद्वसे जुदा पड़ जाता है।

यह भगवान की कही बात है, सब न्याय से कहा गया है। उसकी तू तुलना कर, समझ कर तो तुझको खबर पड़े कि यही मार्ग है। जिसको जन्म-मरण के दु:ख से मुक्त होना हो, उसको ऐसा सम्यक्त्व प्रकट किये ही

छुटकारा है। अन्यथा अनादि से चौरासी के अवतार में परिभ्रमण तो चालू है ही। अनन्तबार अरबपति सेठ भी हुआ और सौ बार माँगने पर ही ग्रास खाने को मिले- ऐसा भिखारी भी हुआ। यह सब तो कर्म का खेल है, यह कोई आत्मा का स्वरूप नहीं है। आत्मा का स्वरूप समझकर अनुभव करने से तो स्वरूप में विश्राम मिलता है, अनुभव का आनन्द मिलता है, पुण्य-पाप का द्वंद्व और शरीरादि पुद्गलों से अहंबुद्धि छूट जाती है।

'जातै थिर रहै अनुभव विलास गहै।' विकल्प से भिन्न पड़कर, स्वरूप का अनुभव करके उसमें स्थिर होकर धर्मी अनुभव का विलास करता है। अब वह फिर से कभी शरीरादि में ममत्व नहीं करता, राग को निज नहीं मानता।

यह तो 'काजल की कोठरी में रहना और पग को दाग नहीं लगने देना' -इसके जैसी बात किसी को लगती है, परन्तु ऐसा नहीं है। यह तो 'आनन्द की कोठरी में रहना और राग का लेप लगने नहीं देना' उसकी बात है। यह धर्मी हुआ, उसकी बात है; अज्ञानी की बात नहीं। अज्ञानी को तो मैं शरीर और राग की क्रिया से भिन्न हूँ यह भान नहीं है । अत: साधु होकर बहुत क्रिया करे, तब भी दु:खी ही है। अज्ञानी तो सब मरे हुए के समान है, अनन्तकाल में कभी जीवता हुआ नहीं। अष्टपाहुड़ में कहा है कि जिसे राग से भिन्न भगवान आत्मा का अनुभव नहीं, वह चलता मुरदा है, सामान्य मुर्दे को तो दूसरे उठाकर ले जाते हैं और यह चलता है, परन्तु जीवते जीव के भान बिना सब मुर्दे ही हैं। यह बात जीवद्वार के 27वें काव्य में आगे आयेगी कि जिनपद शरीर में नहीं, जिनपद चेतनहार ऐसे चेतन में है।

पुण्य-पाप का विकल्प भी जड़ है, अचेतन है; उसे धर्मी अपना नहीं मानते। अज्ञानी ने अनन्तकाल में सब किया है, एक यह 'सम्यग्दर्शन' नहीं किया। इससे बहुत कठिन लगता है; परन्तु जिनके यह कर लिया -ऐसे धर्मी तो अनुभव का विलास करते हैं। लोग कामकाज फैलाकर खुले में कुर्सी डालकर एक साथ बैठें, गप्पें मारें और नाश्ता उड़ावें उसमें विलास मानते हैं;

परन्तु उसमें सुख नहीं है। किसी के द्वारा अभिनन्दन देने में सुख मानते हैं, परन्तु आबरू में सुख कहाँ है ?पूर्व के पुण्य के रजकण थे, वे आकर जल गये; उसमें तेरे हिस्से में क्या आया ?पूर्व एकेन्द्रियादि में कोई शुभभाव हुए होंगे, उससे साता कर्म बँधा पड़ा था, उसका उदयकाल आने से ऐसा बनाव बना कि पाँच-पच्चीस करोड़ रुपये एकत्रित हो गये दिखते हैं; परन्तु वे तो जड़ में एकत्रित हुए हैं। तू तो चैतन्य है तुझे तो वे छूते भी नहीं। परिवार के साथ बँगले में बैठे हों, तब यह याद आता है ?

जो धर्मी हुए हैं, वे अब सादि-अनन्तकाल पुद्गल को अपना नहीं मानते। पर में सुख नहीं मानते। पर में सुख मानना तो अज्ञानी की कल्पना है। वास्तव में शरीर में, पैसे में या वैभव में जीव का सुख कहाँ से हो ?अज्ञानी अज्ञान से पर में सुख मानकर मिथ्यात्व का सेवन करता है और फिर दया, दानादि के शुभभाव और क्रिया करके उनसे धर्म मानता है, परन्तु वह क्रिया जीव की नहीं है। तो जीव की सच्ची क्रिया क्या है ?

'यहै करतूति यौं जुदाई करै जगत सौ।' -जो क्रिया जीव को सम्पूर्ण जगत से भिन्न करती है, वह जीव की सच्ची धार्मिक क्रिया है। यह क्रिया धर्मी को पुण्य के विकल्प से लेकर सम्पूर्ण संसार से इसप्रकार भिन्न कर देती है। जैसे अग्नि सुवर्ण को किट्टिमा से भिन्न कर देती है। सोना खान में से पत्थर सहित निकलता है, उसको अग्नि में तपाने से वह पत्थर से भिन्न हो जाता है; वैसे ही अनादि से आत्मा पुण्य-पाप सहित दिखता था, वह भेदविज्ञान की क्रिया से पत्थर समान पुण्य-पाप के विकल्प, कर्म और शरीर से सोना जैसा भगवान आत्मा भिन्न पड़ जाता है। इस भेदविज्ञान से ही धर्म की शुरूआत होती है। पैसे से, शरीर की क्रिया से धर्म नहीं होता। पैसे से धर्म होता हो, तब तो गरीब को धर्म कहाँ से हो ? परन्तु ऐसा नहीं है।

जैसे अग्नि कंचन और पत्थर को भिन्न करती है; वैसे ही ध्यानाग्नि अथवा भेदज्ञान अग्नि परसन्मुखता रूप विकल्प से स्वसन्मुखता रूप अन्तर की शान्ति को भिन्न कर देती है और स्वभाव में एकत्व को पाती है इसका

नाम ही सम्यग्दर्शन है, यही भेदविज्ञान है, यही सम्यग्ज्ञान है और यही वीतरागमार्ग की शोभा है।

आत्मा को राग व पुण्य-पाप के विकल्प सहित मानना मिथ्यादृष्टि का लक्षण है और उनसे रहित आत्मा को जानना सम्यग्दृष्टि का लक्षण है। जो कोई ऐसे सम्यक्त्व बिना व्रत, दानादि क्रिया करे, उसे पुण्यबंध होता है; परन्तु धर्म नहीं होता, जन्म-मरण का अन्त नहीं आता। जन्म-मरण के अन्त का उपाय तो यह एक 'भेदविज्ञान' है।

श्री अमृतचन्द्राचार्य के 23 वें श्लोक पर पण्डित बनारसीदास ने पद्य की रचना इस प्रकार की है-

परमार्थ की शिक्षा

बानारसी कहै भैया भव्य सुनौ मेरी सीख,
कैहूं भांति कैसै हूंकै ऐसौ काजु कीजिए।
एकहू मुहूरत मिथ्यातकौ विधुंस होइ,
ग्यानकौं जगाइ अंस हंस खोजि लीजिए।
वाहीकौ विचार वाकौ ध्यान यहै कौतहूल,
यौंही भरि जनम परम रस पीजिए।
तजि भव-वासकौ विलास सविकाररूप,
अंतकरि मोह कौ अनंतकाल जीजिए ।।24।।

अर्थः- पण्डित बनारसीदासजी कहते हैं-हे भाई भव्य! मेरा उपदेश सुनो कि किसी प्रयत्न से और कैसे ही बनकर ऐसा काम करो जिससे मात्र अंतर्मुहूर्त के लिये मिथ्यात्व का उदय न रहे, ज्ञान का अंश जाग्रत हो आत्म-स्वरूपकी पहिचान होवे। यावज्जीव उसहीका विचार, उसहीका ध्यान, उस ही की लीला में परमरस का पान करो और राग-द्वेषमय संसार की भटकना छोड़कर तथा मोह का नाश करके सिद्धपद प्राप्त करो।।24।।

काव्य - 24 पर प्रवचन

आचार्यदेव कहते हैं और बनारसीदासजी भी कहते हैं कि हे भव्यजीवों!

मेरा उपदेश- शिक्षा एकबार सुनो कि किसी भी उपाय से और किसी भी प्रकार से ऐसा काम कर कि जिससे मात्र अन्तर्मुहूर्त के लिए मिथ्यात्व का उदय न रहे, ज्ञान का अंश जागृत हो और आत्मस्वरूप की पहिचान हो। जिन्दगी भर उसी का विचार, उसी का ध्यान, उसी की लीला में परमरस का पान करो और राग-द्वेषमय संसार का परिभ्रमण छोड़कर तथा मोह का नाश करके सिद्धपद प्राप्त करो।

यह मक्खन-सारभूत बात है! मनुष्यदेह में एक यही कार्य करने का है। अत: समस्त कोलाहल छोड़कर एक यह कर। एक अन्तर्मुहूर्त मिथ्यात्व का नाश कर और भगवान ज्ञानस्वभाव को खोजकर उसे प्रकट कर। आत्मा के अन्तरस्वरूप का अनुभव करने पर मिथ्यात्व का नाश हो जाता है। अत: ज्ञानपुंज भगवान आत्मा को जगा दे। अहो, ज्ञानस्वरूप! ज्ञानस्वरूप!!

भजन मण्डली वालों ने गाया है न!

सरोवर कांठे रे मृगला तरस्या रे.....साचा वारी ऐने ना मले रे.....

मनना मृगला ने पाछा बालजे रे लाल....।

मनरूपी मृग पुण्य-पाप के विकल्प में जाता है, वहाँ हैरान होता है, दु:खी होता है। उसे वहाँ से छुड़ाकर अन्तर्मुख करना।

'जोड़ी द्यो आतम सरोवरे आज; ऐने मलशे आतमसुख अमूला रे लाल.....।

यहाँ कहते हैं कि 'ज्ञान को जगाय अंस हंस खोजि लीजिए' शब्द थोड़े हैं; परन्तु भाव समझने में विशेष पुरुषार्थ अपेक्षित है। ज्ञानसरोवर भगवान आत्मा तो ज्ञान का महान समुद्र है, अनन्त-अनन्त ज्ञानस्वभाव का सागर है। जब उसमें पुण्य-पाप के विकल्पों की भी गंध नहीं है तो शरीर, मन, वाणी आदि जड़ पदार्थ तो उसमें हो ही कैसे सकते हैं? शरीरादि का संयोग तो उसके स्वयं के कारण हुआ है, उसके कारण टिकता है और उसी के कारण छूट जायेगा। उसमें चैतन्यहंस नहीं है और चैतन्यहंस में ये शरीरादि नहीं हैं और न उसमें राग ही है। अत: शरीर और रागरहित ज्ञानहंस को खोजकर उसे

जगा ! राग और क्रिया के विकल्प से भिन्न ज्ञानस्वभाव को वर्तमान पर्याय में पकड़कर सम्यग्ज्ञान का अंश प्रकट कर।

श्रोता:- साहेब !....परन्तु हमें व्यापारधंधा करना या यह करना.... ?

पूज्य गुरुदेवश्री:- भाई ! व्यापार-धंधा करना -यह तो तेरा कार्य ही नहीं है। जीव व्यापार-धंधा कर ही नहीं सकता, मात्र संकल्प-विकल्प करके दु:खी होता है और उसके फल में चार गतियों में परिभ्रमण करना पड़ेगा, वह अलग। इसके बदले एकबार तो देख, अन्तर में मेरी वस्तु क्या है ?कैसी है ?कैसे प्राप्त हो ?आत्मा को खोजकर उसका अंश प्रकट कर। अन्तर में तो (आत्मा) महान ज्ञान का समुद्र है। उसमें से पहले अंश तो प्रकट कर।

यह भाषा की बात नहीं है, भाव की बात है। भाई ! आत्मा को जगा ! आत्मा में शोध ! उसमें शान्ति और आनन्द है। तेरा मनरूपी हिरण पुण्य और पाप में भटका करता है, वहाँ से वापस हटाकर उसे एकबार ज्ञानस्वभाव में ले जा न ! यह एक ही कार्य तुझे करने योग्य है, शेष तो सब व्यर्थ हैं। मात्र दु:खी होने का मार्ग है।

भगवान ! तेरे में तो आनन्द है और यह आनन्द ज्ञान से अविनाभावी है। जहाँ ज्ञानस्वभाव है, वहीं आनन्द है। अन्तर में उसे शोधकर चैतन्य हंस को जगा तो तुझे सम्यग्दर्शनरूप धर्म प्रकट होगा।

'याही को विचार या को ध्यान यहै कौतुहल' ज्ञानस्वरूप भगवान चैतन्य के तेज का भण्डार है, उसी का विचार कर। उसे ही ज्ञान में ध्येय बनाकर उसका ध्यान कर। बाहरी वस्तुओं का ध्यान छोड़ दे। तू स्त्री, पुत्र, परिवार में कहाँ है ? तेरा उनमें विरह है अर्थात् उनमें कहीं भी तेरा जीवत्व नहीं है। अत: उनका ध्यान छोड़ दे।

बहुत से लोग प्रश्न करते हैं कि पहले क्या करना ? उसका उत्तर यह है कि प्रथम ही आत्मा को ध्येय बनाकर उसका ध्यान करना। श्रद्धा-ज्ञान में अन्तर्मुख लक्ष्य होने पर ही धर्म की प्राप्ति होती है, इसके अतिरिक्त अन्य किसी भी प्रकार से धर्म नहीं होता है।

अहो कितना धीरज! कितनी खोज! कितना पर से पराङ्मुखता का पुरुषार्थ! कितना अन्तर्मुख होने का प्रयत्न! इसके बिना जन्म-मरण का दु:ख नहीं मिटता..आत्मा प्राप्त नहीं होता। यह सुन्दर शरीर, युवापना और पाँच-पच्चीस लाख रुपये दिखते हैं, इनमें कहीं सुख नहीं है। यह सब तो श्मशान की राख है। जो अपना नहीं है, उसको अपना माना और स्वरूप को भूल गया- इसी से दु:खी हुआ है। प्रभु! तेरा होनापना-अस्तित्व तो तेरे स्वभाव में है, उसमें से तेरा अतीन्द्रिय-आनन्द खोज ले।

विकल्प है, वह विकार है और ज्ञानस्वभाव अविकार है इन दोनों को पृथक् कर दे। जैसे हंस की चोंच दूध और पानी को पृथक् कर देती है, उसीप्रकार अपने ज्ञान द्वारा राग और चैतन्यहंस को पृथक् कर दे। यही तेरे करने योग्य एक कार्य है, यही हितरूप कार्य है; अन्य सब तो एक रहित शून्य के समान निरर्थक हैं।

पाँच-पाँच हाथ के बड़े चार-चार लड़के हों, बहुत कमाई करके लाते हों, कारखाने लगाये हों उद्योगपति कहलाता हो तो इसको ऐसा लगता है कि हम कुछ सुखी हैं; परन्तु भाई! यह तो पाप का उद्योगपति है, इसने अपनी आत्मा को खोया है।

अब आत्मा का कौतूहल तो कर कि यह ज्ञान और आनन्दमय आत्मा कौन है? (लोग) परदे में रहनेवाली रानी के देखने का कौतूहल करते हैं, तो यह पुण्य-पाप के परदे के पीछे रहे हुए आत्मा को देखने का कौतूहल तो कर! उसे देख! उसका विचार कर! उसमें ज्ञान और आनन्द है। उसके ज्ञानानन्दमय रस को पी! पागलपन छोड़ दे!.. परन्तु अरे रे! इसे अन्तर में सूझ नहीं पड़ती..बाहर की धमाधम में हैरान होकर, मरकर कहाँ चला जाता है? और मरण कब आनेवाला है- यह तो खबर नहीं है। ज्योतिषियों ने चौरासी वर्ष की आयु बतलाई हो और अड़तालीस वर्ष में मरण हो जाता है। अत: कहीं रुके बिना, सर्वप्रथम आत्मा का हित कर लेने की आवश्यकता है। रुचि की दिशा पलटे तो आत्मा की दशा पलट जाती है।

एकबार ज्ञानानन्द के परम रस को पी ले। कभी जिसका स्वाद नहीं चखा– ऐसे अतीन्द्रिय रस का पान कर।

'तजि भववास को विलास सविकाररूप' – अर्थात् भव के वास का विलास तो विकाररूप है। उस राग-द्वेषमय विकार से संसार का परिभ्रमण होता है; अतः अब उसको छोड़ और **'अंतकरि मोह कौ अनन्त काल जीजिए'** – मोह का नाश करके सिद्धपद प्राप्त करो। अनन्तकालीन सुख को प्राप्त करो। अमर हो जाओ।

इस प्रकार यहाँ समयसार के 23वें कलश के काव्यरूप 24वाँ काव्य कहा। *क्रमशः*

पृष्ठ 8 को शेष....

और काललब्धि दोनों शामिल ही हैं। जिसके ज्ञान में केवलज्ञान के सामर्थ्य का निर्णय हुआ, उसकी अल्प काल में मुक्ति केवलज्ञान में लिखी हुई है। जिस ज्ञान ने केवलज्ञान का निर्णय किया, वह ज्ञान राग से पृथक् होकर निजस्वभाव तरफ चला-उसको सम्यक्त्व होगा... होगा... और होगा ही।

द्रव्यस्वभाव तरफ झुकने पर वहाँ पर्याय में सम्यक्त्व की काललब्धि आ ही जाती है। इसके सिवाय दूसरे करोड़ों उपाय बाहर में करता रहे तो भी सम्यक्त्व होता नहीं, सम्यक्त्व वह सहज वस्तु है, बाहर के प्रयत्नों द्वारा वह साधी नहीं जा सकती, विकल्परूप प्रयत्नों के द्वारा स्वानुभव होता नहीं, स्वानुभव सहज है अर्थात् परिणति स्वरूप में प्रवेश हो गई, वहाँ पुरुषार्थ का भी विकल्प नहीं है—ऐसी सहज परिणतिरूप सम्यक्त्व है, इस प्रकार का आशय समझना।

आत्मधर्म (हिन्दी), वर्ष-22, अंक-8

गतांक से आगे

श्रुत परम्परा एवं श्रुतज्ञान का स्वरूप

उत्पत्ति की अपेक्षा इस श्रुतज्ञान के दो भेद हैं—अशब्दलिंगज व शब्दलिंगज। शब्दों के अतिरिक्त अन्य पदार्थों या लिंग अर्थात् चिह्न विशेष के निमित्त से उत्पन्न हुआ श्रुतज्ञान अशब्दलिंगज कहलाता है। पदार्थ के निमित्त से उत्पन्न होने के कारण इसे ही अर्थलिंगज भी कहा जाता है। जैसा कि धवला पुस्तक 13 में पृष्ठ 245 पर कहा गया है—'धूम के निमित्त से अग्नि का ज्ञान होना अशब्दलिंगज श्रुतज्ञान है तथा वचन समुदाय से जो श्रुतज्ञान उत्पन्न होता है, उसे शब्दलिंगज श्रुतज्ञान कहते हैं।'

श्रुतज्ञान के भेदों के मध्य शब्दलिंगज अर्थात् अक्षर, वर्ण, पद, वाक्य आदिरूप शब्द से उत्पन्न हुआ जो अक्षरात्मक श्रुतज्ञान वह प्रधान है। क्योंकि लेना, देना, शास्त्र पढ़ना इत्यादि सर्व व्यवहारों का मूल अक्षरात्मक श्रुतज्ञान है। लिंग अर्थात् चिह्न से उत्पन्न हुआ जो श्रुतज्ञान है, वह एकेन्द्रिय से लेकर पंचेन्द्रिय तक के जीवों में होता है, किन्तु उससे कुछ व्यवहार की प्रवृत्ति नहीं होती, इसलिए वह अप्रधान होता है।

(गोम्मटसार जीवकाण्ड, गाथा 315, पृष्ठ 167)

प्रवृत्ति की अपेक्षा श्रुतज्ञान के दो भेद हैं—द्रव्य श्रुतज्ञान एवं भाव श्रुतज्ञान। श्रुत शब्द 'श्रु' धातु से बनता है, जिसका अर्थ सुनना है। श्रुतज्ञान रूप भी होता है और शब्दरूप भी। जिस ज्ञान के होने पर वक्ता शब्द का उच्च्चारण करता है, वक्ता का वह ज्ञान और श्रोता को शब्द सुनने के बाद होनेवाला ज्ञान भावश्रुत है अर्थात् ज्ञानरूप श्रुत है और उसमें निमित्त वचन द्रव्यश्रुत है।

'पुद्गल द्रव्य स्वरूप अक्षर-पदादिक रूप से द्रव्यश्रुत है और उसके सुनने से श्रुतज्ञान की पर्याय जो उत्पन्न हुआ ज्ञान, सो भावश्रुत है।'

'आचारांग आदि बारह अंग, उत्पाद पूर्व आदि चौदह पूर्व और चकार से सामायिक आदि चौदह प्रकीर्णक स्वरूप द्रव्यश्रुत जानना और इनके

सुनने से उत्पन्न हुआ जो ज्ञान, सो भावश्रुतज्ञान जानना।'

(गोम्मटसार जीवकाण्ड, गाथा 348-349, पृष्ठ 179)

यहाँ यह बात विचारणीय है कि द्वादशांग आदि रूप जो द्रव्यश्रुतज्ञान है, वह शब्दादिक द्वारा ही प्रवृत्त होता है, अत: वह शब्दलिंगज श्रुतज्ञान ही है।

सम्यक्-मिथ्या की अपेक्षा श्रुतज्ञान के दो भेद हैं—श्रुतज्ञान व कुश्रुतज्ञान। सम्यग्दर्शन सहित जो श्रुतज्ञान है, वह सम्यक् श्रुतज्ञान या सुश्रुतज्ञान या श्रुतज्ञान कहलाता है, तथा मिथ्यादर्शन के साथ रहनेवाला श्रुतज्ञान मिथ्या श्रुतज्ञान या कुश्रुतज्ञान कहलाता है।

अब इन भेदों का विस्तार से वर्णन कहते हैं—

1. अशब्दलिंगज (अर्थलिंगज)

अशब्दलिंगज श्रुतज्ञान के बीस भेद हैं—

1. पर्याय, 2. पर्यायसमास, 3. अक्षर, 4. अक्षरसमास, 5. पद, 6. पदसमास, 7. संघात, 8. संघातसमास, 9. प्रतिपत्ति, 10. प्रतिपत्ति समास, 11. अनुयोगद्वार, 12. अनुयोगद्वार समास, 13. प्राभृतप्राभृत, 14. प्राभृत-प्राभृतसमास, 15. प्राभृत, 16. प्राभृतसमास, 17. वस्तु, 18. वस्तुसमास, 19. पूर्व, 20. पूर्वसमास।

(हरिवंश पुराण, सर्ग-10, श्लोक 12-13, पृष्ठ 186-187)

अब प्रत्येक का वर्णन करते हैं—

1. पर्याय श्रुतज्ञान— श्रुतज्ञान के अनेक विकल्पों में एक विकल्प एक ह्रस्व अक्षर रूप भी है। इस विकल्प में द्रव्य की अपेक्षा अनन्तानन्त पुद्गल परमाणुओं से निष्पन्न स्कन्ध का संचय होता है। इस एक ह्रस्वाक्षर रूप विकल्प के अनेक बार अनन्तानन्त भाग किए जायें तो उसमें एक भाग पर्याय नाम का श्रुतज्ञान होता है। यह ज्ञान सबसे जघन्य होता है। इस ज्ञान का कभी नाश नहीं होता। वह पर्याय ज्ञान सूक्ष्म निगोदिया लब्ध्यपर्याप्तक जीव के होता है।

क्रमशः साभार : स्वाध्याय का स्वरूप

प्रेरक-प्रसंग

चमड़े का पारखी

राजा जनक के दरबार में सभी विद्वान एकत्रित हुए थे। एक के बाद एक विद्वान आते गये तथा अपनी-अपनी नियत जगह पर बैठ गये। केवल एक जगह खाली थी, जहाँ एक विद्वान और आ जाये तो राजा जनक भी वहाँ उपस्थित हो जाते। विद्वान अष्टावक्र भी आ गये। यह कहता हुआ द्वारपाल राजा जनक की सेवा में पहुँचा। वह विद्वान सभा-भवन में प्रवेश करे, उसके कुछ क्षण पूर्व राजा जनक अपने सिंहासन पर आकर बैठ गये।

यह विद्वान अपने आसन पर आकर बैठे, तब तक तो सभी विद्वान जोर-जोर से हँसने लगे। अष्टावक्र भी हँसने लगे।

राजा जनक ने अष्टावक्र जी से हँसने का कारण पूछा तो अष्टावक्र जी बोले-ये क्यों हँस रहे हैं ?तभी एक अधपगले विद्वान ने कहा। हम सब तो आपकी आठ स्थानों पर जो बाँकी- टेढ़ी शरीर की आकृति है, उसे देखकर हँस रहे हैं। पर आप क्यों हँस रहे हैं ? अष्टावक्र जी ! राजा जनक ने पूछा तो अष्टावक्र जी बोले- आपने विद्वानों का सम्मेलन बुलाया था। फिर यहाँ तो सभी चमड़े के पारखी दिखाई दे रहे हैं। ऐसे में आपने मुझे निमंत्रण क्यों भेजा ?

विद्वत्- वर्य आप इन्हें चमड़े का पारखी कह रहे हैं । राजा जनक ने कहा- ये सब तो विद्वान हैं और मेरे निमंत्रण पर आये हैं। अष्टावक्र जी बोले- ये तो हड्डी और चमड़े पारखी मेरे शरीर को देख रहे हैं। इन्हें चमड़े का पारखी ही तो कहूगाँ। यह सुनकर विद्वानों के सिर अष्टावक्र जी के सामने शर्म से झुक गये।

शिक्षा- सच्चा पारखी गुणों देखता है। व्यक्ति की पहचान गुणों से होती है, न कि शरीर से। गुणवान व्यक्ति सदा प्रशंसनीय होता है। अतः गुणवान बनना चाहिए।

साभार : बोध कथायें

आचार्यदेव परिचय शृंखला

भगवान महावीरस्वामी पश्चात्
25 वीं शताब्दी में जिनधर्म

भगवान श्री महावीरस्वामी के निर्वाण पश्चात् करीब 683 वर्ष तक तो अंग, पूर्व व अंग-पूर्वांश का ज्ञानप्रवाह क्रमशः क्षीण होता हुआ भी अविरतरूप से चलता रहा। तब तक श्रुत-प्रवाह की मौखिक परम्परा ही थी। तत्पश्चात् ज्ञान विशेष-विशेष क्षीण होता जाने से ग्रंथ लिखने की परम्परा शुरु हुई।

तत्पश्चात् कई महासमर्थ श्रुतधर आचार्य भगवंत धरसेनाचार्य, पुष्पदंत, भूतबलि, कुन्दकुन्दस्वामी, समन्तभद्रस्वामी आदि को उस आचार्य परम्परा से मिला जो श्रुतज्ञान, उससे उन्होंने षट्खंडागम, कसायपाहुड, समयसार, प्रवचनसार, नियमसार, पंचास्तिकायसंग्रह, तत्त्वार्थसूत्र, आप्तमीमांसा, समाधितंत्र, इष्टोपदेश आदि विविध ग्रंथों की रचना करके उस श्रुतज्ञान को चेतनवंत बनाया। तत्पश्चात् कुछेक सारस्वताचार्य हुए, जिन्होंने श्रुत परम्परा में मिले श्रुतज्ञान को अपने आत्मज्ञान व अंतरंग विशुद्धि के बल से मौलिक ग्रंथ और टीका ग्रंथों को लिखकर जिनधर्म को सरल व विशद्रूप से सुदृढ किया।

इस भांति भगवान महावीरस्वामी द्वारा प्रवाहित ज्ञान शनैः शनैः क्षीणता की ओर बहता गया। ऐसा परम्परा से प्रवाहित श्रुतज्ञान करीब 2500 वर्ष तक चला। भगवान महावीर के पश्चात् 2500 वर्षों में, उस ज्ञान गंगा ने कई उतार-चढ़ाव देखे थे। 2500वीं शताब्दी में तो भगवान महावीर के शासन का मूलभूत अंग-अध्यात्मज्ञान लुप्तप्रायः हो गया था। उस ही अन्तर्गत वी.नि. 2416 (वि.सं. 1946, ई. स. 1890) में परम कृपालु सद्गुरुदेव श्री कानजीस्वामी का जन्म हुआ। उन्होंने पूर्व में विदेहक्षेत्रस्थ भगवान सीमंधरस्वामी से प्राप्त देशना और वर्तमान में ग्रंथाधिराज समयसार से निज आत्मसाक्षात्कार किया। इतना ही नहीं, उक्त दिगम्बर परम्परा में हुए सभी आचार्यों के ग्रंथ का रसास्वादन कर उन्होंने अपनी आत्म-परिणति को विशेष निर्मल बनाई। पुण्यशाली भव्यजीवों को उनका पावन, अध्यात्मरस गंभीर, शुद्धात्म दृष्टिप्रधान उपदेश भी मिला। परम कृपालु पूज्य गुरुदेवश्री को, जब से समयसार ग्रंथ प्राप्त हुआ, तब से उन्होंने निरन्तर 58 वर्ष तक आचार्यकृत दिगम्बर ग्रंथों का रोजाना गहन अध्ययन किया। (उससे पूर्व उन्होंने कुल-परम्परा से मिले श्वेताम्बर, स्थानकवासी ग्रंथों गहन

अभ्यास किया था, पर जिसकी उन्हें चाह थी, वह उनमें उन्हें नहीं मिला।) दिगम्बर आचार्योंकृत सभी ग्रंथों से वे अपनी परिणति को निर्मल बनाते तो थे ही, साथ में उन्होंने उन विविध दिगम्बर ग्रंथों में से किन्हीं ग्रंथ पर एक बार व किन्हीं ग्रंथ पर अनेक बार मुमुक्षु सभा में प्रवचन दिये। सीमंधर भगवान का आशीष प्राप्त पूज्य गुरुदेव ने भगवत् कुन्दकुन्दाचार्यदेव के पंच परमागमों के न्यायों की तो मूसलधार वर्षा बरसाकर समस्त दिगम्बर शासन पर व मुख्यरूप से मुमुक्षु समाज पर असीम उपकार किया है। अभी भी टेप-प्रवचनों द्वारा भाग्यशाली मुमुक्षुओं पर अद्भुत कृपा कर रहे हैं। उनके उपकार छाया में मुमुक्षुगण अपने-अपने पुरुषार्थ व परिणति अनुसार अपना जीवनपंथ उज्ज्वल कर रहे हैं।

इस भांति श्रुतज्ञान की जो परम्परा भगवान महावीर से शुरु होती हुई, उक्त विविध आचार्यों के माध्यम से परमकृपालु सद्गुरुदेवश्री कानजीस्वामी को मिला। उन्होंने अपने अनुभव बल से बहुश्रुतपरम्परा को नवपल्लवित करके अनहद प्रभावना की।

यह सब उपकार आचार्यवर आपका, आपके ग्रंथों का व उनके पावन प्रातप से परमकृपालु श्री कहानगुरुदेव का है। जिनसे यह ज्ञानप्रवाह अभी तक अक्षुण्णधारा से बह रहा है। हे आचार्य भगवंत! आपके ग्रंथ! व हे कहानगुरुदेव! आपके ऐसे असीम उपकारों से नम्रीभूत हो, हम आपको कोटि कोटि वंदना करते हैं।

परम पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी की शीतल छाया में-जिन्हें पूज्य गुरुदेवश्री 'इस काल का आश्चर्य', 'आराधना की देवी', 'भगवती' आदि विविध उपमाओं से अलंकृत करते थे, ऐसे-प्रशममूर्ति भगवती बहिनश्री चम्पाबेन ने भी अपने अद्भुत ज्ञान-वैराग्य-पूजा-भक्ति-धर्मचर्चाओं द्वारा तथा जिनायतनों में दिगम्बर आचार्य भगवंतों व साधकों की चित्रावलियों द्वारा मुमुक्षुजीवों के हृदय में आचार्यों आदि प्रति भक्तिभाव जागृत कर अनुपम उपकार किया है।

अंत में, फिर से इस भांति आचार्यदेव आपको, आपके ग्रंथों को, पूज्य कहान गुरुदेवश्री को व पूज्य बहिनश्री को—भगवान महावीर की इस ज्ञानगंगा को अक्षुण्ण बनाये रखने के लिए कोटि-कोटि वंदना करते हैं।

गणनातीत तुझ उपकार, मुझ अणु अणुए रे.....
शब्दोंथी केम कथाय! नमुं नमुं भावे रे .....

साभार : भगवान महावीर की आचार्य परम्परा

जिस प्रकार–उसी प्रकार में छिपा रहस्य

जिस प्रकार– जगत में चिन्तामणि, कल्पवृक्ष, कामधेनु गाय और पारस– पत्थर मनवांछित पुद्गल पदार्थो को देने में प्रसिद्ध है।

उसी प्रकार– चैतन्य स्वरूप अपनी आत्मा त्रिलोक पूज्य पूर्ण पवित्रता, वीतरागता, सर्वज्ञता, वीरता तथा अनन्त आनन्द आदि विभूतियाँ देने में प्रसिद्ध है। अतः अपनी आत्मा ही लोक में सर्वोत्कृष्ट चिंतामणि रत्न है।

जैसे– पारस पत्थर के स्पर्श से लोहा भी सोना हो जाता है।

उसी प्रकार– चैतन्य चिन्तामणि का स्पर्श होते ही आत्मा से परमात्मा बन जाता है। व्यवहार से भी धर्मात्मा भगवान पारसमणी हैं क्योंकि उसके सम्पर्क में आने वाले की दरिद्रता दूर हो जाती है।

जैसे– गाय सायंकाल होते ही अपने घर पहुंच जाती है। उसे मोहल्ले का नाम, गली का नम्बर, मकान का नाम आदि कुछ भी पता नहीं है। मात्र अपनी जगह की अनुभूति है, उसी के बल पर अपनी जगह आ जाती है, रास्ते में आने वाले बाजार,दुकान घर तो सहजरूप से छूट जाते है।

उसी प्रकार– जिसे मात्र अपनी आत्मा की अनुभूति– श्रद्धा है उसे भले ही छह द्रव्य के नाम, सात तत्त्व के नाम, वर्ग, नरक, पहाड़, समुद्र, सूर्य, चन्द्रमा आदि का ज्ञान न हो, कुछ फर्क नहीं पड़ता, पर सम्बन्धी विकल्प तो सहज रूप से छूट जाते है।

जिस प्रकार– चतुर किसान बीज, चारे के लिए नहीं बोता है परन्तु अनाज हेतु बोता है, अनाज के साथ चारा भी बहुत होता है। वह मनुष्यों को नहीं पशुओं को खिलाया जाता है।

उसी प्रकार– चतुर श्रावक वीतरागता /आत्मा पवित्रता/ आत्म रमणता के लिए धर्म करता है, बहुत सारा पुण्य साथ में आ जाता है, जिसे वह आत्म कल्याण हेतु हितकर नहीं मानता।

जिस प्रकार– उल्लू को सूर्य का प्रकाश अच्छा नहीं लगता, उसे तो अंधेरा अच्छा लगता है।

उसी प्रकार– चैतन्य का प्रकाश करनेवाला, यह वीतरागी उपदेश जिसे नहीं रूचता वह भी मिथ्यात्व के घोर अंधकार को अच्छा मानता है।

क्रमशः संकलन – प्रो० पुरुषोत्तमकुमार जैन, रुड़की

समाचार-दर्शन

आध्यात्मिक शिक्षण शिविर सानन्द सम्पन्न

तीर्थधाम मङ्गलायतन : श्री आदिनाथ कुन्दकुन्द कहान दिगम्बर जैन ट्रस्ट अलीगढ़ द्वारा संचालित तीर्थधाम मङ्गलायतन में कुन्दकुन्द प्रवचन प्रसारण संस्थान, उज्जैन के संयुक्त तत्त्वावधान में दिनांक 30 अक्टूबर से 04 नवम्बर 2021 तक समयसार कहान शताब्दी महोत्सव में ग्रन्थाधिराज समयसार का व्यवस्थित अध्ययन करानेवाला आध्यात्मिक शिक्षण शिविर, विधान, पूजन, प्रवचन, वाचना, जिनेन्द्र भक्ति, सांस्कृतिक कार्यक्रम आदि अनेक मांगलिक आयोजनों सहित सम्पन्न हुआ।

इस आयोजन में देश के समस्त प्रान्तों से लगभग 200 लोगों ने और उपस्थित मङ्गलार्थी छात्रों ने समयसार के आध्यात्मिक विषय का गहराई से अध्ययन किया।

31 अक्टूबर को प्रातः आयोजित उद्घाटन समारोह में मंगल कलश शोभायात्रा, ध्वजारोहण श्री जैनबहादुर जैन परिवार, कानपुर एवं धवलाजी विराजमानकर्ता श्री कमल जैन मधु जैन बोहरा परिवार कोटा, शिविर का उद्घाटन श्री विजय बड़जात्या, इन्दौर एवं श्री पद्म पहाड़िया, इन्दौर के करकमलों द्वारा किया गया।

उद्घाटन सभा के अध्यक्ष श्री विजय बड़जात्या; मुख्य अतिथि पण्डित विमलदादा झांझरी; पण्डित राजेन्द्र जैन, जबलपुर; पण्डित देवेन्द्रकुमार जैन, बिजौलियां; पण्डित जे. पी. दोशी, मुम्बई; पण्डित प्रदीप झांझरी, सूरत; डॉ. योगेश जैन, अलीगंज; पण्डित अजित जैन, अलवर; ब्रह्मचारी सुकुमाल झांझरी; बालब्रह्मचारिणी कल्पनाबेन; पण्डित अशोक लुहाड़िया, पण्डित सचिन जैन, पण्डित सुधीर शास्त्री, डॉ. सचिन्द्र शास्त्री, तीर्थधाम मङ्गलायतन; डॉ. विवेक जैन, इन्दौर; पण्डित सुनील धवल, पण्डित दीपक धवल; पण्डित दिव्यांशु शास्त्री; पण्डित रेवांशु शास्त्री; श्री अशोक जैन, जबलपुर आदि का समागम प्राप्त हुआ। मंचासीन अतिथियों का स्वागत श्री स्वप्निल जैन, श्री ऋषभ जैन, श्री सौधर्म जैन ने किया।

सभा का संचालन पण्डित सुधीर शास्त्री, मङ्गलार्थी कृतिकराज एवं सम्यक् शिकोहाबाद ने किया। मङ्गलाचरण वरांग जैन, इन्दौर ने किया। शिविर का परिचय पण्डित देवेन्द्रकुमार जैन, बिजौलियां ने दिया।

पूजन-विधान, प्रातः महावीर जिनालय में डॉ. हुकमचन्द भारिल्ल, पण्डित राजमलजी पवैया, पण्डित अभयकुमार जैन द्वारा रचित अलग-अलग समयसार विधान प्रतिदिन भक्तिभाव सहित सम्पन्न हुआ।

स्वाध्याय की शृंखला—प्रातः 9.45 से 10.15 तक पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी का सी.डी. प्रवचन ग्रन्थाधिराज समयसार की 14-15 वीं गाथा पर, तत्पश्चात् पण्डित विमलदादा झांझरी; पण्डित राजेन्द्र जैन, जबलपुर का समयसार की 37-37-38का सुबह-शाम लाभ मिला।

दोपहर में—बालब्रह्मचारी कल्पनाबेन का श्लोक पाठ एवं धवलाजी वाचना, तत्पश्चात् पण्डित देवेन्द्रकुमार जैन, बिजौलियां; पण्डित सचिन जैन, पण्डित प्रदीप झांझरी, डॉ. योगेश जैन, अलीगंज।

सायं काल—मधुर संगीतमय जिनेन्द्र भक्ति के पश्चात् मुम्बई से पधारे पण्डित जे. पी. दोशी (समयसार संवर अधिकार एवं सैंतालीस शक्ति) एवं पण्डित राजेन्द्र जैन, जबलपुर का लाभ प्राप्त हुआ।

सांस्कृतिक कार्यक्रम—प्रतिदिन प्रथम दिन पण्डित अशोक लुहाड़िया एवं मङ्गलार्थी पीयूष जैन, करेली द्वारा ग्रन्थाधिराज समयसार एवं पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी के जीवनवृत्त को लेकर 'कौन बनेगा ज्ञानपति'; दूसरे दिन श्रीमती अनुभूति जैन, विलासपुर एवं श्रीमती पूजा मोदी, इन्दौर द्वारा 'मेरे सिद्ध प्रभु का नम्बर'; तीसरे दिन बालब्रह्मचारिणी ज्ञानधाराबेन, समताबेन और श्रीमती अनीता जैन तथा अमीधारा जैन सम्पूर्ण झांझरी परिवार द्वारा 'समवसरण का वर्णन'; चौथे दिन प्राचार्य डॉ. सचिन्द्र जैन द्वारा भगवान श्री आदिनाथ विद्यानिकेतन का परिचयपूर्वक धार्मिक परीक्षा परिणाम घोषित किया गया तथा मङ्गलार्थी छात्रों द्वारा 'मङ्गलायतन दर्शन' कार्यक्रम का प्रदर्शन किया गया। सभी कार्यक्रमों की अध्यक्षता हेतु पण्डित जे. पी. दोशी, मुम्बई, श्री अखिलेश जैन, इन्दौर का लाभ प्राप्त हुआ।

बेस्ट मङ्गलार्थी छात्र का अवार्ड मङ्गलार्थी वरांग जैन, इन्दौर को लेपटॉप, पण्डित अशोक-सौधर्म लुहाड़िया परिवार द्वारा प्रदान किया गया।

सम्पूर्ण कार्यक्रम के ई-मैनेजमेन्ट में श्री अनुज जैन छिन्दवाड़ा का सहयोग प्राप्त हुआ।

वीर निर्वाण महोत्सव

दिनांक 4 नवम्बर 2021 को महावीर जिनालय से भगवान महावीर की मंगल यात्रा कैलाशपर्वत पर कृत्रिम पावापुरी की रचना की गयी, तत्पश्चात् महावीर पंच कल्याणकों के जीवन्त परिदृश्य दिखाकर भगवान महावीर का निर्वाण महोत्सव अत्यन्त भक्तिपूर्वक उपस्थित साधर्मी प्रो. जयन्तीलाल जैन; श्री महेन्द्रभाई जैन,

अहमदाबाद; श्री सन्तोष जैन, दमोह; श्री संदीप जैन, मेरठ; श्री संजीव जैन, गुरसराय; श्रीमती ज्योति जैन, इटावा; श्री सुमतप्रकाश जैन, हाथरस; श्री अनिल जैन, बुलन्दशहर; श्री पवन जैन-मुकेश जैन परिवार, अलीगढ़; झांझरी परिवार उज्जैन-सूरत; पावना इंटरनेशनल स्कूल, अलीगढ़ की प्राचार्य श्रीमती आरती निगम; पण्डित अमित अरहन्त, मडावरा; पण्डित सौरभ शास्त्री, सागर सहित भाई-बहिनों एवं मङ्गलार्थी छात्रों ने हर्षोल्लासपूर्वक मनाया।

मोक्षायतन संकुल का भव्य शिलान्यास

पिडावा (राज.) : श्री शान्तिनाथ-कुन्थुनाथ-अरनाथ कुन्दकुन्द कहान दिगम्बर जैन ट्रस्ट, पिडावा के अन्तर्गत दिनांक 24-25 अक्टूबर 2021 को श्री रत्नत्रय विधान एवं भव्य शिलान्यास समारोह उत्साह के साथ सम्पन्न किया गया। विधान आमन्त्रणकर्ता डॉ. किरण शाह; सुनील गाँधी, पुणे; ध्वजारोहणकर्ता श्री नवीनभाई मीनाक्षीबेन मेहता; ब्रजलाल हथाया; मधुबेन मुम्बई के करकमलों से सम्पन्न हुआ। तदनन्तर शिलान्यास सभा का आयोजन जिसकी अध्यक्षता श्री प्रदीप चौधरी किशनगढ़; सभा गौरव जिनमन्दिर शिलान्यासकर्ता श्री प्रेमचन्द बजाज, कोटा; स्वाध्यायभवन शिलान्यासकर्ता डॉ. अशोक रितु जैन परिवार, इन्दौर; समयसार कीर्तिस्तम्भ शिलान्यासकर्ता श्री वीरेन्द्र हरसौरा आदि मुख्य अतिथि के रूप में श्री महीपालजी ज्ञायक, बांसवाड़ा; श्री सुशील बजाज, कोलकाता; श्री बीनुभाई शाह, मुम्बई; श्री अशोक जैन, सुभाष ट्रान्सपोर्ट, भोपाल; स्थानीय विद्वान पण्डित धनसिंह जैन, पण्डित कमल जैन, पण्डित मनीष जैन आदि महानुभाव उपस्थित थे। श्री विजय बड़जात्या इन्दौर के द्वारा अतिथियों का आभार प्रदर्शन किया गया। सम्पूर्ण कार्यक्रम पण्डित बालब्रह्मचारी जतीशचन्द्र शास्त्री; पण्डित रजनीभाई दोशी, हिम्मतनगर; पण्डित विराग जैन, जबलपुर; पण्डित नगेश जैन, पिड़ावा; पण्डित अमित अरहन्त आदि के देखरेख में सम्पन्न हुए।

भक्तामर स्तोत्र ऑडियो का विमोचन

मुम्बई : श्री कुन्दकुन्द कहान पारमार्थिक ट्रस्ट, मुम्बई द्वारा आचार्य मानतुंग विरचित भक्तामर स्तोत्र का ऑडियो संस्करण आधुनिक तकनीक के प्रयोग के साथ सभी डिजिटल प्लेटफार्म पर रिलीज किया गया। जिसमें मधुर स्वर ख्याति प्राप्त गायक युगल श्री गौरव जैन-दीपशिखा जैन जयपुर द्वारा प्रदान किया गया। इसमें भक्तामर के प्रत्येक श्लोक के बाद उसका अर्थ एवं पार्श्वस्वर पण्डित अनुभव जैन शास्त्री द्वारा, भक्तामर की परिकल्पना पण्डित राहुल शास्त्री मुम्बई द्वारा की गयी। जिसका विमोचन 10 अक्टूबर 2021 को श्री सीमन्धरस्वामी दिगम्बर जैन मन्दिर विलेपार्ले मुम्बई में किया गया। मंच संचालन श्री भव्य मेहता एवं पण्डित प्रांजल जैन शास्त्री द्वारा किया गया। इस

अवसर पर लगभग 500 से अधिक मुमुक्षु भाई-बहिन उपस्थित थे। इसी शृंखला में अध्यात्म संजीवनी संगीतमय भक्ति भजन भी रिलीज किया गया। जिसमें सभी जीवों को वैराग्य व शान्ति का मार्ग बतानेवाली कई भजनों की प्रस्तुति ट्रस्ट द्वारा की जायेगी।

भक्तामर कला प्रदर्शनी का भव्य शुभारम्भ

सोनगढ़ : पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी की साधनाभूमि स्वर्णपुरी सोनगढ़ की पावनधरा पर श्री कुन्दकुन्द कहान पारमार्थिक ट्रस्ट मुम्बई द्वारा संचालित 'गुरु कहान कला संग्रहालय' में 10 अगस्त 2021 को प्रात: 10 बजे भक्तामर कला प्रदर्शनी का भव्य शुभारम्भ किया गया। इस प्रदर्शनी में श्री मानतुंगाचार्य द्वारा विरचित भक्तामर स्तोत्र के 48श्लोकों पर 48चित्रों के माध्यम से उसके भावों को प्रस्तुत करने का प्रयास किया गया है। इस प्रदर्शनी का उद्घाटन सोनगढ़ ट्रस्ट के प्रमुख श्री हसमुखभाई बोरा तथा श्री कुन्दकुन्द कहान पारमार्थिक ट्रस्ट के श्री निमेशभाई शाह के साथ दोनों ट्रस्ट के ट्रस्टियों द्वारा किया गया। जिसमें देश-विदेश के अनेक मुमुक्षु भाई-बहिनों ने उत्साहपूर्वक उपस्थिति दर्ज कराकर कार्यक्रम को भव्यरूप से सम्पन्न किया। इस भक्तामर कलाप्रदर्शनी को आप गुरु कहान कला संग्रहालय की वेबसाईट www.gurukahanmuseam.org के माध्यम से भी देख सकते हैं।

वैराग्य समाचार

आगरा : श्रीमती कृष्णादेवी जैन धर्मपत्नी स्व. श्री पद्मचन्दजी सर्राफ, आगरा का देहपरिवर्तन शान्तपरिणामोंपूर्वक हो गया है। आप पण्डित विपिन शास्त्री की माताश्री थी। आप धार्मिक तत्त्वरुचिवन्त भद्रपरिणामी महिला थीं।

कानपुर : श्री विवेक जैन का देहपरिवर्तन शान्तपरिणामोंपूर्वक हो गया है। आप मङ्गलार्थी पुलकित जैन एवं प्रणव जैन के पिताश्री थे।

गढाकोटा : श्रीमती सुनीता जैन छतपुरिया का देहपरिवर्तन शान्तपरिणामोंपूर्वक हो गया है। आप धार्मिक तत्त्वरुचिवन्त भद्रपरिणामी महिला थीं।

खनियाधाना : श्री कपूरचन्दजी चौधरी का देहपरिवर्तन शान्तपरिणामोंपूर्वक हो गया है। आप धार्मिक तत्त्वरुचिवन्त भद्रपरिणामी महानुभाव थे। आप देवेन्द्रकुमार जैन, अरविन्दकुमार जैन, राजेन्द्रकुमार जैन के पिताजी थे।

दिवंगत आत्माएँ शीघ्र ही मोक्षमार्ग प्रशस्त कर अभ्युदय को प्राप्त हो—ऐसी भावना मङ्गलायतन परिवार व्यक्त करता है।

षट्खण्डागम ग्रन्थ की तृतीय पुस्तक की वाचना सम्पन्न

तीर्थधाम मङ्गलायतन में प्रथम बार कीर्तिमान रचते हुए प्रथम श्रुतस्कन्ध **'षट्खण्डागम धवला टीका सहित'** वाचना का कार्यक्रम, मार्गशीर्ष पंचमी, शनिवार 5 दिसम्बर 2020 से अनवरत प्रारम्भ है। जिसकी प्रथम पुस्तक की वाचना का समापन 31 मार्च 2021 को भक्तिभावपूर्वक सम्पन्न हुई। जिसकी द्वितीय पुस्तक की वाचना का प्रारम्भ 01 अप्रेल से, समापन 08 जुलाई 2021 को भक्तिभावपूर्वक सम्पन्न हुई। तृतीय पुस्तक की वाचना का प्रारम्भ 09 जुलाई 2021 तथा समापन 24 अक्टूबर 2021 को भक्तिभावपूर्वक हुई।

विद्वान पण्डित जे.पी. दोशी, मुम्बई; प्रो. जयन्तीलाल जैन, मंगलायतन विश्वविद्यालय एवं बालब्रह्मचारिणी कल्पनाबेन, जयपुर तथा सहयोगी बहिनों एवं मंगलायतन परिवार का भी लाभ प्राप्त हुआ।

चतुर्थ पुस्तक की वाचना 25 अक्टूबर 2021 से प्रारम्भ

विद्वत् समागम – बालब्रह्मचारिणी कल्पनाबेन, जयपुर एवं सहयोगी बहिनों तथा मंगलायतन परिवार का भी लाभ प्राप्त होगा।

दोपहर 01.30 से 03.15 तक (प्रतिदिन)		**षट्खण्डागम (धवलाजी)**
रात्रि	07.30 से 08.30 बजे तक	मूलाचार ग्रन्थ का स्वाध्याय
	08.30 से 09.15 बजे तक	**समयसार ग्रन्थाधिराज के कलशों का व्याकरण के नियमानुसार शुद्ध उच्च्चारण सहित सामान्यार्थ**

नोट—इस कार्यक्रम में आप ZOOM ID-9121984198,
Password - 1008 के माध्यम से भी शामिल हो सकते हैं।

श्री समयसार
विधान

श्री समयसार
विधान

महावीर निर्वाण महोत्सव की झलकियाँ

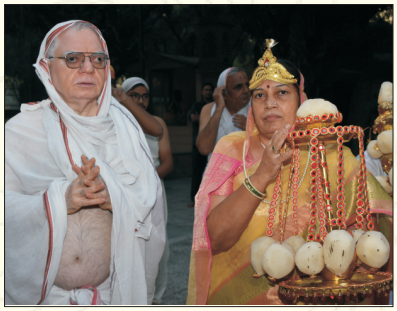

नवम्बर का E - अंक

Regn. No. : DELBIL / 2001/4685 Postal regn. No. : A.L.G. / 29 / 2021-23

पं. सं. : DELBIL/2001/4685

स्वामी, प्रकाशक एवं मुद्रक पवन जैन द्वारा **मङ्गलायतन** मुद्रणालय, आगरा रोड, अलीगढ़-202001 छपवाकर, 'विमलांचल', हरिनगर, अलीगढ़-202001 से प्रकाशित। सम्पादक : डॉ. सचिन्द्र शास्त्री, मङ्गलायतन।

मङ्गलायतन

श्री आदिनाथ-कुन्दकुन्द-कहान दिगम्बर जैन ट्रस्ट, हरिनगर, आगरारोड, अलीगढ़-202001 (उ.प्र.)

Shri Adinath-Kundkund-Kahan Digamber Jain Trust

Harinagar, Agra Road, Aligarh-202001 (U.P.)

Ph. : 9997996346, 2410010/10; Fax : 2410019/22

info@mangalayatan.com www.mangalayatan.com